Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 12, Issue 1 | May 2024 - October 2024 | pp. 65-70

मीणा जनजाति की राजनीतिक स्थिति : एक ऐतिहासिक अध्ययन

शंकर लाल मीना

सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

राजस्थान में सभ्यता का विस्तार प्राचीन काल से ही हुआ है। यहाँ सिन्धु घाटी के चिन्ह-मिले हैं। तत्पश्चात आहड़ सभ्यता प्रस्फुटित हुई। फिर आर्य लोग आये और उत्तर में बस गए। जनपद युग के दौरान यहाँ मालव, शिवि, अर्जुनायन, शाल्व, यौधेय जातियां आकर बस गई। राजस्थान कुछ समय तक गुप्त वंश के आधिपत्य में रहा और हूणों द्वारा उनका अधिकार और प्रभाव नगण्य कर दिया गया। अतः स्पष्ट है कि राजस्थान विभिन्न जातियों का स्थल रहा है और उनका समन्वय यहाँ के लोगों की शारीरिक रचना, सामाजिक जीवन, व्यवसाय और रीति रिवाजों में पाया जाता है। पौराणिक तथा ऐतिहासिक तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि राजस्थान की जनजाति अनादि काल से ही हिंदू धर्म की अनुयायी रहे हैं तथा इनकी स्वाभिमानी जीवन पद्धति को अभिव्यक्त करने वाला एक गौरवपूर्ण इतिहास भी रहा है। मीणा जनजाति, भारत की प्राचीन आदिवासी जनजातियों में से एक, भारतीय इतिहास और संस्कृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस जनजाति का उद्गम मत्स्य जनपद से माना जाता है। मुनि मगनसागर द्वारा लिखित 'मीन पुराण भूमिका' ग्रन्थ में मीणा जाति का भगवान के मत्स्यावतार से सम्बन्ध दर्शाया गया है। मीणा जनजाति भारत की विविधता और समृद्ध इतिहास का प्रतीक है।

संकेताक्षर—*शासकीय जनजाति, मत्स्यावतार, राजनीतिक इतिहास, सांस्कृतिक विरासत*

प्रस्तावना

मीणा जनजाति भारत की मूल जातियों में से एक हैं। ऐसी मान्यता है कि आर्यों के आने से पूर्व यह जाति भारत में बसती थी और इस जाति का गण चिह्न मीन (मछली) था। इतिहासकार हरमन गाइज ने अपनी पुस्तक "आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर" में लिखा है कि आधुनिक भारत में निवास करने वाले मीणा जनजाति प्राचीन भारतवर्ष की मत्स्य आदिम जाति की संतान हैं।[1]

एच.एम. रिजवी ने अपनी पुस्तक 'मीना द रूलिंग ट्राइब' में मीणा जनजाति को 'शासकीय जनजाति' के रूप में उल्लेखित किया है। इन्होंने 11वीं शताब्दी से लेकर ब्रिटिश आधिपत्य काल तक मीणा जनजाति के राजनीतिक इतिहास पर प्रकाश डाला है। सर्वप्रथम इन्होंने राजपूताने के उस क्षेत्र को रेखांकित किया है जहाँ मीणा जाति औपनिवेशिक काल के समकाल में शासकीय जीवन का बसेरा कर रही थी। इन्होंने राजस्थान के अलवर, अजमेर, सवाई माधोपुर, गंगापुर, जयपुर, दौसा, भरतपुर, चित्तौड़गढ़, कोटा, बूँदी क्षेत्र को मीणा जनजाति बाहुल्य क्षेत्र के रूप में प्रस्तुत किया।

रिजवी महोदय के अनुसार मीणा जनजाति मध्यकालीन दौर में दिल्ली के समीपवर्ती मेवात क्षेत्र में उपद्रवी, लूटमार एवं विद्रोहात्मक गतिविधियों द्वारा खानाबदोश जीवन-यापन करती थी। किन्तु बलवन एवं अलाउद्दीन खिलजी के दमनात्मक एवं प्रतिक्रियात्मक कार्यवाहियों से तंग आकर ये राजपूताने की ओर अग्रसर हुई और वहाँ अपना स्थायी निवास बनाया।

मध्यकाल में मीणा जाति राजपूत शासकों के अधीनस्थ रूप में शासकीय क्रियाकलाप करती थी, किन्तु राजपूतों की सत्ता

प्रतीकात्मक थी, जबकि मीणा जाति स्वतंत्र रूप से अपने क्षेत्रों में शासकीय सामाजिक गतिविधियाँ करती थी। मीणा जाति के शासकीय क्षेत्र निम्न थे—1. ढूंढाड़ के पछवारा मीणा, 2. खोहगंग के चांदा मीणा, 3. दौसा के बड़गूजर मीणा, 4. मांची के सिहरा मीणा, 5. आमेर का सुसावत मीणा, 6. गैटोर के नांढला मीणा, 7. बांसकुआँ के कुँभाणी मीणा तथा 8. बूँदी के बुंदा मीणा।

राजस्थान में जयपुर, सवाई माधोपुर, भरतपुर, बूँदी, टोंक, कोटा, गंगानगर, सिरोही एवं राजस्थान के कुछ भागों में मीणा जनजाति बाहुल्य क्षेत्र रहा है।[2] मध्यकाल से ही मीणा जाति ने राजपूतों के सामंत, प्रशासक, द्वारपाल, राजस्व वसूलकर्ता, पहरेदारी, सैन्य-साजों समान का प्रबन्धकर्ता एवं जमींदार-काश्तकार के रूप में अपनी सेवा प्रदान की है। अतः जब राजपूताना के इन देशी नरेशों ने अपनी प्रभुसत्ता अंग्रेजों के हाथों सौंप दी और उनके अधीनस्थ एवं करद राज्यों के रूप में कार्य किया तो स्वाभाविक रूप से इनकी उक्त भूमिका में मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन हुआ।

ब्रिटिश शासन के अधीन राजस्थान में मीणा की शासकीय गतिविधियों एवं लूटमार अपराधी प्रवृत्तियों पर काबू पाने का कुछ हद तक सफल प्रयास किया गया। चूंकि मीणा जाति के उक्त क्षेत्रों पर उनका कोई राजतंत्रात्मक या राजवंशीय शासन नहीं था, बल्कि वे जातीय गुणों के रूप में शासन करते थे। अपने-अपने गोत्र एवं कुलों के वंशजों पर इनका पूरा नियंत्रण था और इनका अपना-अपना क्षेत्र, मुख्यालय, कुलदेवता एवं कुलदेवी[3] हुआ करती थी। मत्स्य जनपद को मीणों की उद्‌गम भूमि माना गया है। वहाँ से इनका विस्तार सम्पूर्ण राजस्थान में हुआ है। भीलों की तरह मीणा आदिवासी समुदाय सातवीं से बारहवीं सदी के दौरान राजपूत आक्रमणों का शिकार रहे हैं। पूर्वी राजस्थान में इनके छोटे-छोटे आदिवासी राज्य होने का उल्लेख भी मिलता है। ऐसा विवरण मिलता है कि ढूँढार क्षेत्र में मीणा शक्ति का दमन कर कछवाहा राजवंश ने अपनी सत्ता स्थापित की। इसे आमेर व जयपुर राजघराने के रूप में जाना जाता है। ढूँढार में मीणा-राजपूत संघर्ष का लम्बा इतिहास है। अन्ततः दोनों के मध्य एक आपसी समझ विकसित हुई एवं मीणों को परास्त करने के पश्चात् भी अनेक विशेषाधिकार दिये गये, जिससे राजपूत-मीणा मित्रता कायम हुई। उन्हें राज्य के खजाने के रक्षक होने के विशेषाधिकार के साथ-साथ कछवाह राजघराने के राजतिलक का अधिकार प्राप्त हुआ। बूँदी में हाड़ा राजपूतों ने मीणों को पराजित कर अपनी सत्ता स्थापित की। बूँदी का नामकरण बूँदी मीणा के नाम से हुआ बताया जाता है। इसी प्रकार गौढ़वार पाली, जालौर, नागौर, मण्डोर, भद्राजून में भी मीणा आदिवासियों के मुखियाओं के राज्य अथवा स्वायत्तशासी जनजातीय संगठन थे जिन्हें हराकर राजपूतों ने अपने राज्यों में सम्मिलित किया।

मध्यकाल तक मीणा समुदाय की स्वतंत्र अथवा स्वायत्तशासी राजनीतिक शक्ति समाप्त हो गयी एवं वे राजपूत राज्यों के अन्तर्गत आ गये। राजपूत राज्यों में उन्हें अनेक विशेषाधिकार मिले एवं काफी सीमा तक वे शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहे। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत अन्य आदिवासी समुदायों की तरह मीणा समुदाय भी औपनिवेशिक नीति का शिकार था। ब्रिटिश शासन की दमनात्मक नीति के विरुद्ध मीणों ने विद्रोह किये। इन्हें शक्ति के बल पर दबा दिया गया। खैराड के मीणा विद्रोहों को शांत करने के लिये 1855 ई. में देवली में सैनिक छावनी स्थापित हुई।[4]

नई व्यवस्था के प्रति अपना रोष प्रकट करने के लिए 1851 ई. में उदयपुर राज्य के जहाजपुर परगने के मीणों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। इस क्षेत्र की मीणा जाति पर्याप्त रूप में किसी भी राजनीतिक सत्ता से मुक्त थी, केवल महाराणा मेवाड़ की प्रतीकात्मक सत्ता स्वीकार करते थे। कर्नल टॉड ने इनका जीवन्त विवरण प्रस्तुत किया है जो उपरोक्त तथ्य को सिद्ध करता है।[5] ये अंग्रेज ही थे जो इस क्षेत्र पर उदयपुर राज्य का कठोर नियंत्रण स्थापित कर सके। ब्रिटिश शासित अजमेर प्रान्त के समीप स्थित इस मीना क्षेत्र पर राज्य की सत्ता स्थापित हो सकी थी। वास्तव में अंग्रेज आदिवासी समुदायों के प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रसित थे। इसलिए अंग्रेज इन लोगों के साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार करते थे। 1820-21 में अंग्रेजों द्वारा मेरो के दमन से मीणा समुदाय के लोग भली-भाँति परिचित थे। अतः जहाजपुर क्षेत्र के मीणा समुदाय तथा अंग्रेज अधिकारियों के मध्य विरोध अस्तित्व में आया। मीणा व भीलों के विद्रोह केवल अंग्रेजों के विरुद्ध ही नहीं थे बल्कि वे सम्बन्धित राज्यों के विरुद्ध भी थे, जिनके माध्यम से अंग्रेज अपनी नीतियों को कार्यान्वित करवा रहे थे।

महाराणा मेवाड़ ने 1851 ई. में जहाजपुर परगने में नया हाकिम नियुक्त किया।[6] नवनियुक्त हाकिम मेहता रघुनाथ सिंह परगने

से धन कमाने में व्यस्त था। उसने अपना ध्यान मुख्य तौर पर परगने की आय में वृद्धि तथा खर्चे में कमी पर केन्द्रित किया। प्रशासनिक सुधारों के नाम पर जनता से धन वसूली की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बहुसंख्यक मीणा समुदाय ने उपद्रव का रास्ता अपनाया विद्रोही मीणों ने ना केवल राजस्व अधिकारियों व महाजनों (बनियों) को लूटा बल्कि समीप स्थित अजमेर-मेरवाड़ा के अंग्रेजों के प्रान्त पर भी धावे मारे। अंग्रेज अधिकारियों की शिकायतों के आधार पर महाराणा ने हाकिम का स्थानान्तरण कर मेहता अजीत सिंह को विद्रोही मीणों के दमन के कठिन कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से हाकिम नियुक्त किया। वह उदयपुर से एक सेना लेकर रवाना हुआ। इसके साथ शाहपुरा, बनेड़ा, बिजौलिया, भैंसरोड़, जहाजपुर, मांडलगढ़ के जागीरदारों की सेनाएँ सम्मिलित थी। इनके अतिरिक्त भीम पल्टन व एक लिंग पल्टन के सिपाही दो तोपों सहित इस सेना के साथ जोड़े गए। एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना के कहने पर जयपुर, टोंक एवं बूँदी राज्यों ने अपने राज्य की सीमाओं पर चौकसी पक्की कर दी, जिससे जहाजपुर के मीणों को अन्य राज्यों के मीणों द्वारा सहायता व समर्थन की सम्भावना को समाप्त कर दिया गया।

उदयपुर की सेनाओं ने छोटी लुहारी व बड़ी लुहारी नामक गाँवों पर आक्रमण किया जो मीणा विद्रोह के मुखियाओं के गांव थे। सेनाओं ने दोनों ही गाँवों को नष्ट कर दिया तथा मीणे सपरिवार मनोहरगढ़ एवं देवखेड़ा की पहाडियों की ओर भागे, वहाँ उन्होंने रक्षात्मक स्थिति प्राप्त कर ली थी। इसी बीच जयपुर, बूँदी, टोंक राज्यों के तमाम प्रतिबन्धों के उपरान्त भी लगभग 5000 मीणे जहाजपुर के मीणों की सहायतार्थ पहुँच गए थे। उदयपुर की सेनाओं ने भरसक प्रयत्न किए किन्तु सघन झाड़ियों व पहाड़ी प्रदेश होने के कारण सैनिक कार्यवाही में अनेक रूकावट उत्पन्न हो रही थी, इसलिए इस सेना को कोई सफलता नहीं मिली। राज्य सेना के लगभग 57 सिपाही इस अभियान में मारे गए।

दिसम्बर, 1854 में एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना, मेवाड़ का पॉलिटिकल एजेन्ट व हाड़ौती का पॉलिटिकल एजेन्ट संयुक्त रूप से सेना सहित जहाजपुर पहुँचे तथा जहाजपुर व ईंटोदा में एक महीने तक रुके रहे। जनवरी, 1855 के अन्त तक मीणे इस सेना के समक्ष आत्मसमर्पण के लिए बाध्य हो गए थे। भविष्य में मीणों का सामना करने के उद्देश्य से फरवरी, 1855 में जयपुर, अजमेर, बूँदी एवं मेवाड़ की सीमाओं पर स्थित देवली में एक सैनिक छावनी स्थापित की। मीणों पर नियमित निगरानी रखने के ध्येय से छावनी के आस-पास पुलिस थाने भी स्थापित किए गए। इस प्रकार मीणों का विद्रोह दबाया जा सका। 1855 ई. में देवली छावनी को नवगठित अनियमित सेना का मुख्यालय बनाया गया था, जो 1857 से 1860 के दौरान 42वीं देवली रेजीमेन्ट अथवा मीणा बटालियन के नाम से जानी जाती रही। 1921 में 42वीं देवली रेजीमेन्ट व 43वीं एरिनपुरा रेजीमेन्ट को समाप्त कर दिया। उनके स्थान पर मीणा कॉर्पस की स्थापना की गई थी।[7] देवली में इस सेना का गठन राजस्थान में अदिवासियों के प्रति अंग्रेजी नीति का विस्तार कहा जा सकता है। वास्तव में इस तरह के दमनात्मक उपायों का विस्तार आदिवासी समस्या का समाधान नहीं था, किन्तु नवगठित अमानवीय व अपवित्र औपनिवेशिक व सामन्ती मेल द्वारा स्थापित राजनीतिक सत्ता से और कुछ आशा नहीं की जा सकती थी। पुनः जनवरी, 1860 में जहाजपुर के मीणों ने विद्रोह कर दिया। महाराणा ने 29 जनवरी, 1860 को चन्दनसिंह के नेतृत्व में जहाजपुर की ओर एक सेना भेजी। उसने गाढोली व लुहारी गाँवों पर आक्रमण किया। राज्य सेना ने गाँवों को लूटा व आगजनी भी की। भारी संख्या में मीणों को बन्दी बनाया गया तथा उन लोगों को तोप से उड़ा दिया गया था। मीणों पर पुलिस थानों में नियमित उपस्थिति थोप दी गई थी।[8]

राजस्थान, मध्य भारत और मालवा के राजाओं और नवाबों द्वारा कंपनी का संरक्षण एवं प्रभुत्व स्वीकार करने के प्रमुख कारण थे—राजपूत राजाओं का आंतरिक संघर्ष और पतन (आत्मरक्षा के साहस और शक्ति का अभाव) मराठों के आक्रमण, मीणों का अपने प्राचीन गौरव की स्थापना करने का प्रयास, पिंडारियों की अंधाधुंध लूट, पठानों के आक्रमण आदि। इन सभी कारणों से राजपूत राजाओं ने मेटकाफ से संधियां की। इन संधियों के अनुसार राजपूत राजाओं ने वह कर कंपनी को देने का वचन दिया जो कर मराठों तथा पठानों को दे रहे थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी वचन दिया कि वे किसी अन्य देशी या विदेशी (मराठा, फ्रांसिसी आदि) शक्ति से पत्र व्यवहार नहीं करेंगे और अपने सभी झगडों का निर्णय अंग्रेजों के माध्यम से करेंगे। राजपूत राजाओं के इन वचनों के बदले में कंपनी ने उनके राज्यों की बाह्य आक्रमण तथा आंतरिक

विद्रोह, लूट आदि से रक्षा करने का वचन दिया।

लार्ड हेस्टिंग्स कुछ निश्चित उद्देश्य के साथ भारत के गवर्नर जनरल के पद पर आसीन हुआ था। उसका उद्देश्य था भारतवर्ष में कंपनी की सार्वभौम शक्ति बनाना। इसके लिए भारतीय राजाओं और नवाबों का कंपनी के आधिपत्य एवं संरक्षण को स्वीकार करना परमावश्यक था। वह महान साम्राज्यवादी होने के साथ ही मानव तथा परिस्थिति का अच्छा पारखी भी था। उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति परिस्थिति को कंपनी के राज्य के विस्तार के अनुकूल समझा और अपने उद्देश्य को क्रियान्वित करने लगा। मराठा उसके मार्ग के सबसे बड़े कंटक थे। अतः उनकी शक्ति का दमन करने के पूर्व उसने नेपाल को (सन् 1814-1816 ई.) जीता, पिण्डारियों का दमन (1816-1818 ई.) किया तथा राजपूत राजाओं से संधियां की। तदुपरांत उसने राजपूत राजाओं के विरुद्ध आक्रमण और विद्रोह करने वाले मराठों और मीणों की ओर ध्यान दिया। वहीं से ईस्ट इंडिया कंपनी और मीणों के बीच संघर्ष का आरंभ हुआ।[9]

कंपनी और मीणों के बीच के संघर्ष के प्रमुख कारण थे-कंपनी की साम्राज्यवादी नीति, लार्ड हेस्टिंग्स का कंपनी को भारत में सार्वभौम शक्ति बनाने का उद्देश्य, कंपनी और राजपूत राजाओं के बीच हुई संधियाँ तथा मीणों का कंपनी के अधीन राजपूत राजाओं, हैदराबाद आदि पर आक्रमण करना आदि। जिस समय मराठे राजस्थान पर आक्रमण कर अपनी तलवार की धार पर मुस्लिम आक्रमण के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता, सभ्यता, संस्कृति और धर्म की रक्षा करने के लिए विख्यात राजाओं के यश एवं ऐश्वर्य को धूल-धूसरित कर रहे थे, मीणा सरदार उन राजपूत राजाओं के द्वारा अपने छीने हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करने लगे। राजपूतों के गर्व को चूर-चूर करने में मराठा और मीणों ने एक-दूसरे के लिए पूरक तथा परिपूरक का काम किया। इन दोनों जीवट जातियों के बीच इस प्रकार का संबंध कब और क्यों स्थापित हुआ, यह यद्यपि शोध का विषय है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि जब औरंगजेब के शासनकाल में मुसलमान शासकों की हिन्दू धर्म विरोधी भावना चरम सीमा पर पहुँच गई और जब औरंगजेब अन्य हिन्दुओं के समान मीणों का दमन तथा धर्म परिवर्तन करने के साथ शिवाजी का अंत करने का प्रयास छल कपट और विश्वासघात के द्वारा करने लगा तब तक मीणों ने दक्षिण भारत की ओर बढ़ना और आक्रमण करना तथा शिवाजी ने उन्हें आश्रय एवं प्रोतसाहित देना आरंभ किया। यहीं से इनका संबंध दृढ होने लगा और बाजीराव पेशवा के काल में वे मराठा सेना के एक अंग बन गए। संभवतः इन मीणों ने सन् 1761 ई. के पानीपत के तृतीय युद्ध में विशाल मराठा सेना के एक अंग के रूप में हाथ बटाया तथा इस युद्ध में मराठों की पराजय के पश्चात् अपना स्वतंत्र संगठन बनाया।[10]

साम्राज्य बनते और बिगड़ते गए पर मीणों की परम्परागत वृत्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। उनमें से जो जागीरों, जमीनों तथा नौकरियों को लोभ में आ गए वे तो थोड़ा व्यवस्थित जीवन अवश्य बिताने लगे पर शेष सभी आयुधजीवी ही बने रहे। अधिकांश संख्या ऐसे ही लोगों की थी। सुदृढ़ मुगल शासन में उनकी इस लूट मार की वृत्ति के अधिक प्रोत्साहन नहीं मिल पाया था, पर मुगल सत्ता के पतन के साथ ही उनके हौंसले पुनः बुलन्द हो गए और उन्होंने पूर्ववत् अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। मराठों को किस प्रकार उन्होंने नाकों चने चबाए इसका हाल हम पढ़ चुके हैं। मराठों के बाद अंग्रेजों ने जिस प्रकार रजवाड़ों को अपनी नीति से दबा दिया उसी प्रकार मीणों का भी शमन करने में सफलता प्राप्त की। फिर भी यह कार्य उनके लिए भी इतना सरल नहीं था। उनके द्वारा सही गई उन तकलीफों के कुछ विवरण हमें प्राप्त हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

दिल्ली के तत्कालीन (सन् 1872) अंग्रेजी राज्य में स्थित शाहजहाँपुर के मीणों की चतुराई दिलेरी, अनुशासन तथा लूटमार की आदतों से तंग आकर ब्रिटिश शासकों ने मीणों के उस क्षेत्र को प्रशासकीय दृष्टि से पृथक किया और सुपरिण्टेण्डैण्ट ऑफ मीणा डिस्ट्रिक्ट्स नाम से एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की। मेवाड़, बूँदी व जयपुर के महाराजाओं तथा सावर दरबार से प्राप्त फौजों की सहायता से उक्त अधिकारी ने मीणों के कुचलने का काम जारी रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि मीणों ने तंग आकर खेती प्रारम्भ कर दी और कुछ लोग मीणा रेजीमेन्ट नाम अंग्रेजी फौज में भर्ती हो गए।

सन् 1807 ई. में भी दिल्ली के अंग्रेजी रेजिडेंट मिस्टर सेटोन द्वारा मेवाती मुखियाओं के साथ एक समझौता किया गया था जिससे उनकी लूट मार तथा उपद्रव की प्रवृत्तियों पर थोड़ी रोक लगे। पर दंडात्मक उपायों का उन पर कभी अनुकूल असर नहीं हुआ।[11] इतना ही नहीं 1807 ई तक अंग्रेजी जिलों के लोग

मेवातियों से इतने भयग्रस्त थे कि रेवाड़ी की फौजी छावनी के सिपाही भी बिना किसी सहायक दल के बाहर निकलने का साहस नहीं करते थे। मेवातियों ने रेवाड़ी के किले तक पर आक्रमण किया था, यद्यपि वह उस छावनी से केवल तीन ही मील पर था, जहाँ भारी संख्या में फौजों का पड़ाव था।

अठारहवीं सदी मीणा जाति के लिये एक 'संक्रमण काल' था। एक ओर यह जाति मुस्लिम शासकों एवं राजपूत नरेशों के दमन से तंग आकर जंगलों में जीवन निर्वाह के लिये बाध्य थी एवं दूसरी ओर छापामार लूटमार व उपद्रवों से नवीन कम्पनी राज के लिये भी संकट उत्पन्न कर रही थी। 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी राज के लिये मीणा मराठों एवं पिण्डारियों के समान नाक में दम किये हुये थे। अंग्रेजों ने मीणा जाति के विरूद्ध दोहरी रणनीति अपनाई। एक ओर इनको मराठों एवं पिण्डारियों के विरूद्ध सुरक्षा कवचन के रूप में इस्तेमाल किया गया एवं अपनी सेना में जगह दी, वहीं दूसरी ओर आपराधिक कानून, जयराम पेशा कानून एवं वन अधिकार कानून जैसे नियमों द्वारा मीणा जनजाति का दमन करने का प्रयास किया। फलतः मीणा जनजाति ने भी अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीतियों के विरूद्ध संघर्ष का बिगुल बजाया। 1857 की क्रांति में मीणा जनजाति का उल्लेखनीय योगदान रहा और राष्ट्रीय आन्दोलन के उत्तरोत्तर विकासक्रम में उत्तरोत्तर योगदान दिया।

20वीं सदी का आरम्भ मीणा जनजाति के राजनीतिक एवं आर्थिक पतन का काल था। जयराम पेशा कानून एवं दादरसी कानून में इन्हें कठोर निगरानी में रखा जाने लगा। इनके घूमने-फिरने पर कठोर नियम बना दिये गये। वे हिन्दू समाज में प्रतिष्ठित व स्वाभिमानी का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे। बच्चों को शिक्षा प्रगति से न केवल दूर बल्कि अपराधी कृत्यों में लगाया जाने लगा। इससे मीणा जाति को सामाजिक प्रतिष्ठा व आर्थिक व्यवस्था की क्षति उठानी पड़ी। कांग्रेस ने देश की जनजातियों का पक्ष लेना आरम्भ किया तो देशी राज्यों में प्रजामण्डल व अन्य राष्ट्रीय संगठनों ने खुलकर मीणों के जनजागरण में हिस्सा लिया।[12] ब्रिटिश सरकार भी कुछ सुधारवाद की ओर झुककर अपराधी जनजाति के लिये प्रशासन में सुधार योजना लागू कर रही थी। परन्तु 1950 तक मीणा जनजाति में राजनीतिक विकास की कोई लहर नहीं पा सकी। यह कार्य स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही प्रारम्भ हुआ। जब सरकार ने 1952 में जयराम पेशा जैसे कानूनों को समाप्त कर मीणा जाति को जनजाति का दर्जा प्रदान कर आरक्षण प्रदान किया।

निष्कर्ष

राजस्थान की मुख्य जनजातियों में मीणा एक प्रमुख जनजाति है और यह प्राचीनकाल में स्वतंत्र और स्वायत्त शासन में सक्षम थी। मध्यकाल में राजपूत राजाओं के अधीन रहते हुए, मीणाओं ने प्रशासनिक और सैन्य भूमिकाएँ निभाई। हालाँकि, राजपूत और अंग्रेजी सत्ता के विस्तार के साथ उनकी स्वतंत्रता सीमित हो गई। ब्रिटिश शासन में मीणा जनजाति को लुटेरा जाति घोषित कर उनके पारंपरिक जीवन पर कई पाबंदियाँ लगाई गईं। ब्रिटिश नीतियों और औपनिवेशिक दमन के कारण मीणाओं ने विद्रोह किया, विशेष रूप से 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में उनका योगदान उल्लेखनीय रहा। उन्होंने औपनिवेशिक सेना में अपनी भूमिका के साथ-साथ अंग्रेजी शासन के खिलाफ संघर्ष भी किया।

आधुनिक काल में, मीणा जनजाति ने शिक्षा, राजनीति और समाज में उल्लेखनीय प्रगति की है। राजस्थान में यह जनजाति विशेषाधिकार प्राप्त अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता प्राप्त है। उनकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, संघर्षशीलता और आत्मनिर्भरता उनकी पहचान को बनाए रखती है।

संदर्भ सूची

1. मीणा, यशोदा, आलेख—मत्स्य में मीणा जनजाति की प्राचीनता, सृजन पत्रिका, अलवर अंक, वर्ष 2006, पृ.सं. 72-73
2. रावत, सारस्वत, मीणा इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2012, पृ.सं. 32
3. रिजवी, एच.एम., मीना द रूलिंग ट्राइव ऑफ राजस्थान, बी.आर. पब्लिकेशन, दिल्ली, 1987, पृ.सं. 78
4. द राजपूताना गजेटियर वाल्यूम 1, कलकत्ता, 1879, पृ.सं. 73-74
5. टॉड, कर्नल जेम्स, एनाल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज़ ऑफ राजस्थान, भाग 2, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008, पृ.सं. 171
6. कविराज श्यामलदास, वीर विनोद भाग-2, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2008, पृ.सं. 156

7. एचीसन, सी.यू., एकलवेशन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेन्टस एण्ड सनदस रिलेटिंग टू इण्डिया एण्ड नेबरिंग कन्ट्रीज, जिल्द 3, 1978, पृ.सं. 123 एवं 334
8. कविराज श्यामलदास, वीर विनोद भाग-2, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2008, पृ.सं. 193-194
9. नागोरी, डॉ. एस.एल. एवं नागोरी, कान्ता, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास : प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक, मलिक एण्ड कम्पनी,जयपुर, 2010, पृ.सं. 58
10. नवल, मदनलाल, अनुसूचित जाति एवं जनजातियां-राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में, ब्रिलियन्ट पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989, पृ.सं. 55
11. त्रिपाठी, रमाशंकर, प्राचीन भारत का इतिहाहस, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1998, पृ.सं. 398
12. सिंह, मुंशी हरदयाल, द कास्टस ऑफ मारवाड़, बुक ट्रेजरर, जोधपुर, 1894, पृ.सं. 51-56